WORLD JOURNAL OF PHARMACEUTICAL RESEARCH
SJIF Impact Factor 8.084
Volume 11, Issue 3, 1171-1181. Review Article ISSN 2277– 7105

चरक संहिता में वर्णित आत्म तत्व का समीक्षात्मक विवेचन

Dr. Navdeep Kaur* and Dr. Neelam Verma

Assistant Professor, P.G Dept. of Samhita & Siddhanta, Babe Ke Ayurvedic Medical College & Hospital, VPO. Daudhar, Distt. Moga, (Pb) 142053.

Article Received on
08 January 2022,

Revised on 28 January 2022,
Accepted on 18 Feb. 2022

DOI: 10.20959/wjpr20223-23350

***Corresponding Author**
Dr. Navdeep Kaur
Assistant Professor, P.G Dept. of Samhita & Siddhanta, Babe Ke Ayurvedic Medical College& Hospital, VPO. Daudhar, Distt. Moga, (Pb) 142053.

शोध लेख

आयुर्वेद एक जीवन शास्त्र है। यह आयु का वेद है अर्थात् जिसमे आयु का वर्णन है, जिसके द्वारा आयु को जाना जाए एवं दीर्घायु और सुखायु को प्राप्त किया जाए ऐसे ज्ञान शास्त्र को आयुर्वेद कहते हैं। आयु का विचार करते समय व्यक्ति के शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इन सब का विचार अभीष्ट होता है और आयुर्वेद में इन सभी का विचार आयु पद से वाच्य है। आयुर्वेद में जीवन या आयु की सत्ता चेतना अर्थात् आत्मा पर ही आधारित है। इसलिए आयु के सम्पूर्ण स्वरूप को समझने के लिए इसके **धारि** आदि पर्याय दिए गए हैं। इन्हीं में से एक पर्याय है चेतनानुवृत्ति। जो आयु या जीवन की निरन्तरता का प्रतीक है। जब तक शरीर में चेतना है, तब तक जीवन है। इसी चेतना आत्मा के रहने पर ही शरीर की चिकित्सा की जा सकती है। अतः आत्म तत्व का चरक संहिता मे विस्तारपूर्वक वर्णन प्राप्त होता है ।

विशिष्ट शब्दः आयुर्वेद आयु आत्म तत्व चरक संहिता.

परिचय

आयुर्वेद आयु का वेद है, क्योंकि आयुर्वेद में आयु के fo"k; में विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। आयु शब्द से सामान्य रूप से जीवन का ग्रहण किया जाता है, किन्तु इस चिकित्साशास्त्र में आयु की अधिक सटीक व्याख्या की गई है –

शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्। नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्य्यायैरायुरूच्यते।।; च. सू. (1/42)

शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग को आयु कहते है, लेकिन इन चार तत्त्वों में शरीर, इंद्रिय और मन अचेतन होते हैं। इनसे चेतना; आत्मा का संयोग होने पर ही जीवन प्रारम्भ होता है, अतः जीवन की शुरुआत के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व आत्मा ही है। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र के साथ–साथ अध्यात्म का भी मिश्रण है। इसमें आत्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रिय पंचपंचक का वर्णन किया गया है। सृष्टि क्रम में सबसे पहले बुद्धि तत्त्व की उत्पत्ति होकर उससे आगे मन, इन्द्रियाँ आदि की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार पुरुष की उत्पत्ति के आत्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रिय और महाभूत मूल कारण है उसी प्रकार पुरुष में होने वाले रोगों के भी मूल कारण हैं।

यथा बुद्धि भ्रंश से, मन के अहितकर विषयों में प्रवृत्ति से, असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग से और आत्मा के इनसे संलग्न होने पर ही शरीर और मन विकारग्रस्त हो सकते हैं क्योंकि शरीर में आत्मा की अभिव्यक्ति बुद्धि, मन और इन्द्रियों द्वारा होने से, दोनों ही प्रकृति और विकृति के हेतु समान हो जाते हैं। इन मूल कारणों के विकारग्रस्त होने पर रोग उत्पन्न होते है।

इस प्रकार रोगों की चिकित्सा के लिए इन मूल कारणो के उपर ध्यान देना भी अनिवार्य है। क्योंकि आयुर्वेद में रोगों की केवल लाक्षणिक चिकित्सा ही नहीं की जाती अपितु उन रोगों के मूल कारणों की भी चिकित्सा करने को कहा है।

इन मूल तत्त्वों में मन को भी योग द्वारा नियंत्रित या स्वस्थ रखा जा सकता है। इन्द्रियों के स्वास्थ्य के लिए त्राटक आदि कर्म किए जा सकते हैं। लेकिन त्रिदण्ड के तीसरे पाद आत्मा के सम्यक रुप से कार्यों में प्रवृत्ति के उपर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आत्मा से शुरु इस जीवन में ज्ञान भी आत्मा के सान्धिय से ही प्राप्त होता है। ज्ञान प्राप्त होने का क्रम है आत्मा से मन चेतना प्राप्त कर इन्द्रियों से सम्बंध स्थापित करता है तथा इन्द्रियॉं अपने विषयों से सम्बंध स्थापित कर विषयों का ज्ञान प्राप्त करती हैं। इस प्रकार आत्मा, मन और इन्द्रियों का आपस में घनिष्ठ सम्बंध है।[1]

इस सम्बंध को जानने और अलग–अलग से अर्थात् आत्मा का मन से या आत्मा का इन्द्रियों से कैसा सम्बंध है, वे इस सम्बंध से कैसे–कैसे कार्य करते है, इनके बीच सम्बंध विच्छेद होने पर किस प्रकार से व्याधि उत्पन्न होती है और व्याधियों की चिकित्सा किस प्रकार से सम्भव है। इन तथ्यों को उजागर करना आवश्यक प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त इस युग अर्थात् कलियुग में आत्मा के बारे में जानना बहुत आवश्यक है। कलियुग में जबकि प्रज्ञापराध और जनपदोद्ध्वंस हो रहा है तथा अधर्म के कार्य हो रहे है, ऐसी स्थिति में हम आत्म तत्त्व के माध्यम से होने वाले विकारों से अपना बचाव किस प्रकार से कर सकते हैं, इस प्रश्न के रूप में यही उत्तर मिलता है कि हमें पुण्य कर्म करने चाहिए, धर्म के कार्य करने चाहिए और धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए। ऐसे पुण्य कर्म या धार्मिक कार्य करने से ही हम अपने आत्म तत्त्व को जान सकते है या आत्मा के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

आत्मा के लक्षण

जब तक मन का आत्मा के साथ संयोग नही होता तब तक मन देशान्तरगति नहीं कर पाता। अतः यहाँ स्वप्न में मन की देशान्तर गति को आत्मा का लक्षण कहा गया है। श्वास–प्रश्वास की क्रियाओं का होते रहना, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन की गति, इन्द्रियान्तरंसंचार, इन्द्रियों को अपने–अपने विषय ग्रहण करने के लिए प्रेरित करना, धारण करना, स्वप्न में देशान्तर में गमन करना, शरीर में पंचभूतमात्र का रह जाना अर्थात् मृत्यु का होना, दक्षिण नेत्र से देखी वस्तु को वाम नेत्र से भी श्यह वही वस्तु हैश ऐसा ज्ञान करना और इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न, चेतना, धृति, बुद्धि, स्मरणशक्ति तथा अहंकार का होना, यह आत्मा के लक्षण हैं। यद्यपि आत्मा स्वयं गुणकर्मों से रहित होती है, फिर भी यह लक्षण जीवित प्राणियों में ही प्राप्त होते हैं, मृत प्राणियों में नहीं। इसलिए इन आरोपित लक्षणों को आत्मा के लक्षणों के रूप में स्वीकार किया जाता है।[2]

आत्मा का अध्यात्मद्रव्यगुणसंग्रह के रूप में वर्णन

मनो मनोऽर्थो बुद्धिरात्मा चेत्यध्यात्मद्रव्यगुणसंग्रहः शुभाशुभप्रवृत्तिनिवृत्तिहेतुश्च, द्रव्याश्रितं कर्म, यदुच्यते कियेति।। (च.सू. 8 ⁄ 13)

आत्मा से संबंधित जो द्रव्य तथा गुण हैं उनके संग्रह को अध्यात्म द्रव्यगुण संग्रह कहा जाता है। ये अध्यात्म द्रव्यगुण शुभ और अशुभ वि यों की प्रवृत्ति और निवृत्ति में हेतु होते हैं। इसी प्रकार द्रव्य ;आत्माद्ध के आश्रित कर्म भी शुभ और अशुभ कर्मों में प्रवृत्ति और निवृत्ति में कारण हैं। कर्म से यहाँ क्रिया का ग्रहण किया जाता है। अर्थात् जब ये द्रव्य रज और तम गुणभूयिष्ठ होते हैं तो अशुभ कर्मों में और सत्व गुणप्रधान होते हैं तो शुभ कर्मों में प्रवृत्ति कराते हैं। उसी प्रकार ये सत्त्वगुण प्रधान होने पर अशुभ कर्मों से निवृत्ति कराते हैं।

आचार्य चक्रपाणि के अनुसार – ये अध्यात्म द्रव्यगुण आत्मा के अर्थात् अपने लिए उपकारक ;हितकारकद्ध तथा अपकारक ;अहितकारकद्ध संग्रह है अर्थात् अध्यात्म द्रव्यगुण संग्रह के सही रूप से कार्यों में प्रवृत्ति से वे उपकारक तथा गलत रूप से कार्यों में प्रवृत्ति से अपकारक होते हैं। यही शुभ, धर्म तथा सुख में प्रवृत्ति और अशुभ, अधर्म तथा दुःख के निवृत्ति का भी कारण है। यदि उचित रूप से इस संग्रह का ज्ञान न प्राप्त किया जाए तो वह संसार चक्र में आवागमन का कारण है और यदि उचित रूप से ज्ञान प्राप्त हो तो मोक्ष का कारण है।

सृष्टि क्रम में आत्म तत्त्व का स्थान

अव्यक्त से सृष्टि प्रारम्भ होती है। अव्यक्त से बुद्धि आदि तत्त्वों का विकास होता है। इससे v"V प्रकृति का निर्माण होता है और अष्टप्रकृति से पुनः यथाक्रम "kksM'k विकारों की उत्पत्ति होती है।[3]

आचार्य चक्रपाणि के अनुसार

महाप्रलये हि विकारस्य प्रकृतौ लयात् प्रकृतिपुरु शावेव परमव्यक्तरूपौ fr"Br ।।

(च. शा. 4/8 पर चक्र)

महाप्रलय में विकार के प्रकृति में लय होने से प्रकृति और पुरुष दोनो ही अव्यक्त रूप से रहते है। प्रकृति अचेतन है और पुरुष चेतन होता है। प्रकृति पुरुष से चेतना प्राप्त कर सृष्टि की रचना करती है। पुरुष से अभिप्राय आत्मतत्त्व से है तथा सृष्टि क्रम आत्मा का अव्यक्त से व्यक्त होना है। प्रलय के बाद सृष्टि रचना की इच्छा उत्पन्न होने पर वह अक्षरभूत आत्मा अपने सत्त्व गुण से सबसे पहले आकाश को उत्पन्न करती है, इसके बाद क्रमशः अन्य भूतों का विकास होता है।

इस प्रकार सृष्टि रचना का उल्लेख आत्मा द्वारा किया गया है।

आयुर्वेदावतरण में आत्म तत्त्व

जिस प्रकार माता में दुग्ध पहले से विद्यमान होता है और बच्चे के वात्सल्य से दूध की प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार आयुर्वेद पहले से ही विद्यमान था, ब्रह्मा जी ने केवल आयुर्वेद के शाश्वत ज्ञान का स्मरण किया।

ब्रह्मा जी के उपदेश से दक्ष प्रजापति–अश्विनी–इन्द्र–भरद्वाजादि को आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ। दक्ष प्रजापति आदि को आयुर्वेद का ज्ञान अपने–अपने गुरु से प्राप्त हुआ लेकिन ब्रह्मा जी को आयुर्वेद का ज्ञान किसी गुरु द्वारा प्राप्त नही हुआ।[4]

आचार्य चक्रपाणि के अनुसार

ब्रह्मणस्तु परमगुरोर्विदितसकलवेदस्य सर्वत्रातिरोहितमतेरायुर्वेदज्ञानं स्वतः सिद्वमेवेति न गुर्वन्तरापेक्षा ।।

(च. सू. 1/4–5 पर चक्र)

ब्रह्मा के श्रेष्ठ गुरु होने के कारण उन्हें सभी विषयों का ज्ञान था। उनकी बुद्वि सर्वत्र ही प्रत्यक्षगम्य थी तथा उनका ज्ञान स्वतः सिद्ध था । अतः उन्हें किसी अन्य गुरु की अपेक्षा नहीं थी। इस कारण स्मरण मात्र से ही उन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया।

आयुर्वेद का अवतरण अवबोध और उपदेश से कहा गया है।

अवबोध से – ब्रह्मा से आयुर्वेद का स्मरण।

उपदेश से – इन्द्र के उपदेश से भरद्वाज ने पृथ्वीलोक में आयुर्वेद का प्रचार किया ।

इस प्रकार ब्रह्मा जी ने सबसे पहले आयुर्वेदशास्त्र का स्मरण कर उसे आगे ग्रहण करवाया।

ब्रह्मा जी ने स्वयं जिस त्रिसूत्र आयुर्वेद के ज्ञान को जाना था वही त्रिसूत्र आयुर्वेद का ज्ञान इन्द्र ने स्वस्थ एवं आतुर दोनो के लिए भरद्वाज के प्रति उपदिष्ट किया था।[5]

इसमें **'बुबुधे'** का आशय स्पष्ट करते हुए आचार्य चक्रपाणि लिखते है –

'बुबुध इति न कृतवान् ' (च. सू. 1/24 पर चक्र) अर्थात् जिसका निर्माण नहीं किया गया । अतः ब्रह्मा जी ने आयुर्वेद के ज्ञान का निर्माण नहीं किया परन्तु पहले से विद्यमान इस आयुर्वेद के ज्ञान को अपनी स्मरण शक्ति से ग्रहण किया।

इसी प्रकार अष्टांग हृदय में आयुर्वेदावतरण में **स्मृत्वा** शब्द का आशय है कि ब्रह्मा जी ने सबसे पहले आयुर्वेद शास्त्र का स्मरण करके उसे दक्ष प्रजापति आदि को ग्रहण करवाया।[6] इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि आयुर्वेद का ज्ञान जो कि पहले से ही विद्यमान था उसे ब्रह्मा जी ने अपनी स्मरण शक्ति द्वारा जाना और स्मरण शक्ति आत्मा का एक लक्षण है।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना धृतिः।

बुद्धिः स्मृतिरहकारो लिङ्गानि परमात्मनः।। (च. शा. 1/72)

सृष्टि क्रम में सबसे पहले बुद्धि तत्त्व की उत्पत्ति होती है। बुद्धि को जब तक स्मृति नहीं हो पाती कि मैं कौन हूँ तब तक अहंकार की उत्पत्ति नही होती। इस प्रकार स्मृति को आत्मा का लक्षण कहा गया है।

आयुर्वेद के प्रयोजन में आत्म तत्त्व का स्थान

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च ।। (च. सू. 30/26)

आयुर्वेद का प्रयोजन स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी व्यक्ति के रोग को दूर करना है।

क) आयुर्वेद के इस द्विविध प्रयोजन में **स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्** में आत्म तत्त्व

कार्यं धातुसाम्यमिहोच्यते । धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्।।

(च. सू. 1/53)

स्वस्थ व्यक्ति का स्वास्थ्य धातुओं की समता पर निर्भर है। आयुर्वेद शास्त्र में धातुओं को सम करना कार्य है और शास्त्र का प्रयोजन भी धातुओं को सम करना है।

कार्य धातुसाम्यं, तस्य लक्षणं विकारोपशमः । परीक्षा त्वस्य–रुगुपशमनं, स्वरवर्णयोगः, शरीरोपचयः, बलवृद्धिः, अभ्यवहार्याभिलाशः, रुचिराहारकाले, अभ्यवहृतस्य चाहारस्य काले सम्यग्जरणं, निद्रालाभो यथाकालं, वैकारिकाणां च स्व"नामदर्शनं, सुखेन च प्रतिबोधनं, वातमूत्रपुरी शरेतसां मुक्तिः, सर्वाकारैर्मनोबुद्धीन्द्रियाणां चाव्यापत्तिरिति ।।

(च. वि. 8/89)

धातु साम्य के 19 लक्षणों को छः भागों में विभक्त किया जा सकता है–[7]

1. **शारीरिक स्वास्थ्य के लक्षण** :– वातमूत्रपुरीश की सम्यक् मुक्ति

शरीरोपचय बलवृद्धि

काले जरणम् सम्यग जरणम्

वर्ण–योगः

2. **मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण**:– सर्वाकारैर्मनो अव्यापत्तिः

3. **मनोदैहिक स्वास्थ्य के लक्षण** :– आहारकाले रुचि आहार–अभिलाशा
निद्रालाभो यथाकालम् सुखेन प्रतिबोधनम्
वैकारिकाणाम् स्वप्नानामदर्शनम्

4. **ऐन्द्रियक स्वास्थ्य के लक्षण** :– स्वर–योगः सर्वाकारैः इन्द्रिय अव्यापत्तिः

5. **मन, देह एवं इन्द्रिय के सामूहिक स्वास्थ्य का लक्षण** :– सम्यक् रूप से रेतस मुक्ति

6. **आध्यात्मिक स्वास्थ्य का लक्षण**:– सर्वाकारैः बुद्धि अव्यापत्तिः

धातु साम्य से आरोग्य की उत्पत्ति और स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा हेतु बताए गए 19 लक्षणों में से एक लक्षण भसर्वाकारैरू बुद्धि अव्यापत्तिरू है, जिसका अर्थ है बुद्धि का सभी प्रकार से व्यापत् रहित होना। इस प्रकार की बुद्धि द्वारा ही सम्यक् रुप से कार्य किया जा सकता है। यदि बुद्धि व्यापत् रहित न हो या बुद्धि का भ्रंश हो जाए तो मनु य अशुभ कर्मों को करने लगता है, जिससे शरीर व मन के सभी दोष प्रकुपित हो जाते है, इसे ही प्रज्ञापराध कहा जाता है। यही प्रज्ञा बुद्धिद्ध का अपराध सभी रोगों का कारण बनता है। इस प्रकार यदि बुद्धि सम्यक रुप से कार्य न करे तो अस्वस्थता और यदि सम्यक रुप से कार्य करे तो स्वस्थता का कारण माना जाता है। यही बुद्धि आत्मा के छः गुणो में से एक गुण है तथा आत्मा द्वारा किए गए पूर्व जन्मकृत कर्मों के आधार पर ही बुद्धि में भिन्नता प्राप्त होती है। इस प्रकार स्वस्थ के स्वास्थ्य रक्षण में आत्म तत्त्व का स्थान पाया जाता है।

ख) आयुर्वेद के इस द्विविध प्रयोजन में **आतुरस्य विकार प्रशमनम्** में आत्म तत्त्व :–
निर्विकारः परस्त्वात्मा सत्वभूतगुणेन्द्रियैः।
चैतन्ये कारणं नित्यो nz”Vk पश्यति हि क्रियाः।।(च. सू. 1/56)

आत्मा निर्विकार है, वह कभी भी विकार ग्रस्त नहीं होती। आत्मा की प्रवृत्ति मन के माध्यम से होती है। आत्मा एवं मन का सम्बन्ध अन्ध पंगु न्याय के समान है जिसमें कि पंगु ज्ञानवान और अक्रियावान तथा अंध अज्ञानी परन्तु क्रियाशील होता है। आत्मा साक्षी, ज्ञानी, चेतन और अक्रियावान होने के कारण पंगु एवं मन अचेतन और क्रियाशील होने से अन्धा है। जिस प्रकार एक अन्धा एवं एक पंगु प्राणी एक दूसरे की सहायता से चलने का कार्य नि पादित करते है उसी प्रकार आत्मा से चेतना प्राप्त कर मन भी विषयों में प्रवृत्ति के कार्यों को सम्पन्न करता है।

1. कर्मज एवं दोष कर्मज व्याधियों में आत्म तत्त्व

आत्मा की अभिव्यक्ति मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा होती है। इनसे होने वाले अशुभ कर्मों का अनुबंध आत्मा के साथ जुड़ा होता है, क्योंकि इन किए गए कर्मों के आधार पर ही आत्मा एक योनि से दूसरी योनि में प्रवेश करती है। शुभ–अशुभ कर्मों के आधार पर आत्मा उच्च–नीच योनियों में प्रवेश करती है। इन्हीं कर्मों के आधार पर आत्मा निर्विकार होते हुए भी दु:खकर भावों से आक्रान्त होती है।

इन्हीं कर्मों के आधार पर आयुर्वेद में कर्मज एवं दो ाकर्मज रोगों का वर्णन किया गया है। कर्मज रोग पूर्वजन्मकृत कर्मों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के रोगों में कोई दृष्ट निदान सेवन नहीं होता है। पूर्वजन्म में

किए गये कर्मों को दैव कहा जाता है, यह भी काल की अपेक्षा करते हैं। पूर्वकर्म भी जब कालोपरान्त विपाचित होते हैं, तभी फलदायक होते हैं।[8]

दोषकर्मज रोग पूर्वजन्म में किये गए अशुभ कर्मों तथा इस जन्म में किये गए मिथ्या आहार–विहार के सेवन से उत्पन्न रोग हैं। इस प्रकार की व्याधि थोड़े से निदान सेवन से ही बलवान रूप में प्रकट होती है।

कर्मज एवं दो षकर्मज व्याधियों की मुख्य चिकित्सा दैवव्यपाश्रय द्वारा की जाती हैं। अगर मन की व्याधि हों तो सत्त्वावजय चिकित्सा की सहायक भूमिका होती है।

दैवव्यपाश्रयं–ea=kS"kf/kef.keaxycY;q (लबल्युपहारहोमनियमप्रायद्दित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि।।
सत्त्वावजयः– पुनरहितेभ्योऽर्थोभ्यो मनोनिग्रहः।। (च. सू. 11/54)

सत्त्वावजय चिकित्सा द्वारा मन जो की अहित वि यों में प्रवृत्त होने से विकार ग्रस्त होता हैं उसकी चिकित्सा की जाती है, परन्तु चिकित्सा करने पर भी ये कर्मज व्याधियाँ तब तक शान्त नहीं होती जब तक पूर्वजन्मकृत कर्मों के फल का भोग द्वारा क्षय नहीं हो जाता ।

आत्मा की अभिव्यक्ति मन द्वारा होने से, मन द्वारा किए गये अहित कर्मों से और उसकी चिकित्सा में, आत्मा का मन के साथ संलग्न होने से विशि ट स्थान हैं। कर्मों का अनुबंध आत्मा से ही होता है, इसलिए भी चिकित्सा में आत्म तत्त्व का विशेष स्थान है।

2. **प्रज्ञापराध एवम् आत्म तत्त्व**

सृष्टि सृजन में प्रकृति और पुरुष के संयोग से सर्वप्रथम बुद्धि की उत्पत्ति होती है, जिससे त्रिगुणात्मक अहंकार की उत्पत्ति होती है। इस अहंकार के बहुरूपावस्था का परिणाम ही सृष्टिगत रचनाएँ हैय जिसमें कर्म पुरुष या चिकित्स्य पुरुष भी है।

इस सिद्धान्तानुसार जैसे बुद्धि ;महत्द्धकी सम्पत्ति पुरुष की उत्पत्ति के कारण रूप में मान्य है, वैसे ही रोगोत्पत्ति के कारण रूप में बुद्धि की विपत्ति अवस्था होनी चाहिए। इसलिए रोगोत्पत्ति के कारण रूप में बुद्धि का अपराध अर्थात प्रज्ञापराध स्वीकार किया जाता है।[9]

धीधृतिस्मृतिविभ्र ष्टः कर्म यत् कुरुतेऽशुभम्। प्रज्ञापराधं तं विद्यत् loZnks"k प्रकोपणम्।। (च. शा. 1/102)

आत्मा का गुण बुद्धि होती है। बुद्धि का अर्थ है प्रज्ञा । अतः रोग उत्पादक भावों में प्रज्ञा का दो ा मूल कारण माना जाता है। प्रज्ञा को यथावत् रूप में धारण करने वाले तीन भाव हैं – धी, धृति, स्मृति। इन तीन भावों के भ्रष्ट हो जाने पर जब व्यक्ति अशुभ कर्म करता है, तब उसे प्रज्ञापराध कहा जाता है। प्रज्ञापराध से ही सभी ारीरिक एवं मानसिक दोष प्रकुपित होते हैं। प्रज्ञापराध रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण होता है।

प्रज्ञापराध की अवस्था में बुद्धि द्वारा उचित रूप से ज्ञान नही होता। कभी यथार्थ ज्ञान और कभी अयथार्थ ज्ञान होता है। बुद्धि द्वारा इस प्रकार के विषम रूप में ज्ञान होने से मनु य वि ाम रूप में ही किसी कार्य में प्रवृत्त होता है। इसके साथ ही धृति भ्रंशता के कारण मन की अहित वि ायों में प्रवृत्ति को रोका नहीं जा सकता तथा स्मृति भ्रंश के कारण यथार्थ ज्ञान विशयक स्मृति न ट हो जाती है। इस प्रकार धी, धृति तथा स्मृति भ्रंशता के कारण मनु य विषम ज्ञान

प्राप्त कर वि ाम रूप से कार्यों में प्रवृत्त होता है जिससे दो ा प्रकुपित होकर विभिन्न प्रकार के रोगों की उत्पत्ति करते है।

विशमाभिनिवेशो यो नित्यानित्ये हिताहिते। ज्ञेयः स बुद्धिविभ्रंशः समं बुद्धिर्हि पश्यति।। (च. शा. 1/99)

बुद्धि के नित्य और अनित्य, हितकारी व अहितकारी कर्म में वि ाम रूप से निर्णय करने को बुद्धि–भ्रंशता कहते है। जैसे कोई आहार विशेष किसी व्यक्ति विशेष के लिए अहितकर है, ऐसी स्थिति में यदि बुद्धि सामान्य अवस्था में है तो उसके द्वारा ज्ञान प्राप्त होगा कि यह आहार विशेष अहितकर है। इस अवस्था में बुद्धि का निश्चयात्मक ज्ञान यही होगा कि, यह अहितकर, है अतः इसका सेवन नही करना चाहिए। लेकिन बुद्धि भ्रंश होने पर हितकर और अहितकर में भेद का निर्णय बुद्धि द्वारा सम्यक रूप से नही लिया जाता और मनुष्य द्वारा अहितकर आहार भी ग्रहण किया जाता है। बुद्धि द्वारा निश्चय कि ये हितकर आहार है, धृति द्वारा उस अहितकर आहार को न खाने का नियमन, स्मृति द्वारा वर्तमान और भवि य में अहिकर क्या है उसकी स्मृति।

विभिन्न प्रकार की कामनाएँ भी बुद्धि को प्रभावित करती है। जब किसी कामना विशे ा से मनु य आसक्त हो जाता है, तो यथावत् ज्ञान नही हो पाता ।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः। ज्ञानाज्ञानविशे शात्तु मार्गामार्गप्रवृत्तयः।। (च. सू. 28/35)

बुद्धि भ्रंश होने के कारण रूप में बताया गया है कि सृष्टि के समस्त प्राणी सुख की इच्छा कर ही किसी भी प्रकार के कार्य में प्रवृत्त होते है, परन्तु वह प्रवृत्ति ज्ञान व अज्ञान के कारण मार्ग या अमार्ग में होती है। जब बुद्धि सामान्यावस्था में होती है तो

यथावत् ज्ञान होता है और प्राणी उचित मार्ग का अनुसरण कर सुख की प्राप्ति करता है, परन्तु जब बुद्धि रज व तम से युक्त होती है तो अज्ञानवश अमार्ग में प्रवृत्त होती है। अमार्ग में प्रवृत्ति ही प्रज्ञापराध है।

प्रज्ञापराध का परिणाम

भ्रंशावस्था में बुद्धि कालानुसार व्यवहार करने का निर्णय न लेकर अयथार्थ निर्णय लेती है ,जो कि व्याधियों का कारण हैं। यथा– ग्री म ऋतु में ीत वातावरण होकर मिथ्यायोग की स्थिति में सम्यक् कियारत बुद्धि उश्ण वस्त्र धारण व शीत से रक्षा हेतु व्यवहार का निर्णय लेती हैं। परन्तु बुद्धि की भ्रंशावस्था में व्यक्ति मानता है कि इस समय ग्री मकाल है तथा इसमें उश्ण वस्त्र धारण अपेक्षित नहीं होगा। परिमाणतः वह रोग ग्रस्त हो जाता हैं।

इस प्रकार, त्रिविध हेतुसंग्रह में प्रज्ञापराध का प्राधान्य है। यह प्रज्ञापराध आत्मा के बुद्धि ;प्रज्ञा द्ध गुण से संबंधित होने के कारण इसमें रोगों की उत्पत्ति होने में एवं उन रोगों की चिकित्सा करने में आत्म तत्त्व की महत्ता सिद्ध होती है।

अतः आत्मा निर्विकार है परन्तु आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर में मन, बुद्धि और इन्द्रियों के माध्यम से होती है। अतः उनके विकार ग्रस्त होने पर जो चिकित्सा की जाती है, उसमें आत्मा का, इनसे घनिष्ठ सम्बन्ध होने से विशेष स्थान है।

विमर्श

आत्म तत्त्व के अध्ययन की आवश्यकता

- चरक संहिता एक चिकित्सा शास्त्र है इसलिए इसमें आत्म तत्त्व का वर्णन स्वास्थ्य और चिकित्सा के परिप्रेक्ष्य से दृ टांत देकर किया गया है।

- आयुर्वेद का अध्ययन करते समय पदार्थ विज्ञान जिसमें कि मूल तत्त्वों और सिद्धान्तो का वर्णन मिलता है, उसमें आत्मा जैसे मूल तत्त्व का भी अध्ययन कराया जाता है। परन्तु तब विद्यार्थी यह सोचते है कि आत्मा जैसे आध्यात्मिक विषय का अध्ययन क्यूँ किया जाए ध् क्योंकि आत्मा जीवन का मूल तत्त्व है । इसी के कारण जीवन की स्थिति बनी हुई है। जब तक शरीर में आत्मा है तब तक ही शरीर के स्वास्थ्य का रक्षण और विकार प्रशमन हेतु चिकित्सा कर्म किया जा सकता है।

आत्म तत्त्व का महत्त्व

आत्मा का प्रधान महत्त्व यही है कि आत्मा एकमात्र चेतन द्रव्य है, इसके अतिरिक्त संसार का कोई भी द्रव्य चेतन नहीं है। सम्पूर्ण अचेतन द्रव्यों को आत्मा द्वारा ही चेतना प्राप्त होती है। इस आत्म तत्त्व के रहने पर ही शरीर की उत्पत्ति और स्थिति बनी हुई है। इसके साथ अचेतन मन, आत्मा द्वारा चेतना प्राप्त करके ही विभिन्न प्रकार के कार्यों को करता है। फिर भी मन को कर्ता नहीं कहा जाता है। यहाँ पर भी चेतना का महत्त्व होने के कारण ही क्रियाशील होने पर भी मन को कर्ता स्वीकार नहीं किया जाता और आत्मा चेतन होने से, नि क्रय होने पर भी उसे कर्ता रूप में स्वीकार किया जाता है।[10]

जिस प्रकार शरीर के अंदर चेतन तत्त्व का महत्त्व है उसी प्रकार शरीर के बाहर अर्थात् संसार में आत्मा का महत्त्व पाया जाता है। संसार के सभी पदार्थों में आत्मा विद्यमान होती है।

- आत्मा का महत्त्व चिकित्सा के संदर्भ में भी प्राप्त होता है। जब तक शरीर में आत्म तत्त्व या चेतना है तब तक उस शरीर की चिकित्सा सम्भव है। चेतन तत्त्व के ारीर से निकल जाने पर न आरोग्य, न रोग और न ही किसी भी रोग की चिकित्सा सम्भव होती है। इसके अतिरिक्त चिकित्सा कर्म का मुख्य उद्देश्य है धातुओं को साम्य करना। धातुओं की समता में एक लक्षण बताया गया है कि **सर्वाकारैः बुद्धि अव्यापत्तिः** ।(च. वि. 8/89) अर्थात् चेतन तत्त्व से प्रादुर्भूत हुई बुद्धि के सम्यक रूप से कार्य करना भी धातुसाम्य ;संपूर्ण स्वास्थ्यद्ध को बनाए रखने के लिए अनिवार्य है।

- चरक संहिता में आत्म तत्त्व का विशद वर्णन किया गया है। यास्क मुनि के अनुसार आत्मा निरन्तर चलती रहती है। आयुर्वेद में इसी तथ्य को कुछ अलग तरीके से वर्णित किया गया है।

अव्यक्ताव्यक्ततां याति व्यक्तादव्यक्ततां पुनः। jtLreksH;kekfo"VÜpdzor~ परिवर्तते।।

ये शां द्वन्द्वे परा सक्तिरहङ्कारपराश्च ये। उदयप्रलयौ ते शां न ते शां ये त्वतोऽन्यथा।। (च. ाा. 1/69)

अर्थात् पुरुष अव्यक्त से उत्पत्ति काल में व्यक्त होता है। प्रलय काल में व्यक्त से अव्यक्त हो जाता है। इस प्रकार पुरुष के व्यक्त से अव्यक्त और अव्यक्त से व्यक्त की परम्परा रज और तम से युक्त होने के कारण चक्र की तरह चलती रहती है। जिन मनु यों की रज और तम इन दोनों में अत्यन्त असक्ति है उन्हीं लोगों के लिए उदय और प्रलय है। जो लोग रज व तम से विमुक्त हैं, अहंकार से भी रहित हैं उन लोगों का उदय और प्रलय नहीं होता है। जहाँ उदय और प्रलय का अर्थ जन्म और मृत्यु है। जन्म–मृत्यु के कारणरूप रज और तम, जब मन से संबंधित रहते हैं और उसके अनुसार बंधन में पड़ने वाला कार्य मन करता है तो मन से नित्य संबंध वाली आत्मा भी बंधन में रहती है। इसलिए जब तक मन रज, तम से युक्त रहता है तब तक पुरुष या आत्मा चक्र की तरह भ्रमण करता रहता है अर्थात् कभी जन्म और कभी मृत्यु को प्राप्त होता है। इस प्रकार आत्मा निरन्तर जन्म और मृत्यु के चक्र में लगी रहती है, किन्तु उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो पाती।

आत्मा के लक्षण

प्राणापानौ निमेषाद्या ,,,,,,,,,,,लिङ्गानि परमात्मनः।। (च. शा. 1/70–72)

जीवित शरीर को मृत शरीर से प्रथक करने वाले जो लक्षण मिलते हैं उन्हीं को आत्मा के लक्षणों के रूप में आरोपित कर कहा गया है। इन लक्षणों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – एक अनैच्छिक क्रियाएँ और दूसरा संज्ञानात्मक क्रियाएँ।

अनैच्छिक क्रियाएँ	**संज्ञानात्मक क्रियाएँ**
प्राण–अपान, निमेष–उन्मेष, जीवन–मृत्यु, मन की गतियां, इन्द्रियान्तरसंचार, प्रेरण–धारण, स्वप्न में देशान्तर गति, दक्षिण नेत्र से देखी गई वस्तु का वाम नेत्र से ज्ञान होना।	इच्छा, द्वेष, सुख–दुःख, प्रयत्न, चेतना, धृति, बुद्धि, स्मृति और अहंकार

अनैच्छिक क्रियाएँ अर्थात् जो क्रियाएँ हम अपनी इच्छा के अधीन नहीं कर सकते या जिन क्रियाओं पर हमारा कोई वश नहीं होता है। प्राण, आपान, निमेष आदि क्रियाएँ बिना हमारे प्रयत्न किए ही होती हैं। परन्तु योगीजन योग या तपस्याा के द्वारा इन क्रियाओं को अपनी इच्छा के अनुसार कर सकते हैं। प्राणापान की क्रिया को अर्थात् वास– प्रश्वास को अपनी इच्छा अनुासार अधिक समय तक रोक कर रख सकते हैं। उसी प्रकार बिना आंख झपके अधिक समय तक किसी भी वस्तु में दृष्टि को स्थिर कर सकते हैं। वह जब संसार से विरिक्त होना चाहते हैं तभी अपनी इच्छा अनुसार जीवन का त्याग कर देते हैं। वे अपनी सिद्धियों से दूसरे के मन की बात भी जान लेते हैं और अपनी इच्छा से मन को एक इन्द्रिय से हटाकर दूसरी इन्द्रिय के विषय में लगा लेते हैं और इच्छा न होने पर मन को इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होने से रोक लेते हैं और आत्मा में स्थिर कर सकते है। इस प्रकार ये अनैच्छिक क्रियाएँ भी योग या तपस्या द्वारा अपनी इच्छा के अधीन प्रवृत्त कराई जा सकती हैं।

इसमें सुख–दुःख, इच्छा–द्वेष, प्रयत्न और चेतना आत्मा के गुण हैं। धृति जो कि बुद्धि की ही एक अवस्था है, वह मन का नियमन करती है। बुद्धि को जब तक अपनी स्मृति नहीं होती कि मैं कौन हूँ तब तक अहंकार ;आत्म परिचयद्ध की उत्पत्ति नहीं होती। इसके अतिरिक्त आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मन के कार्य के स्वरूप में संज्ञानात्मक क्रियाओं को लिया गया है।

- आत्मा को सभी का कारण कहा जाता है। अर्थात् जीवन का, जीवन में ज्ञान का, कार्यों का या कर्मों आदि का कारण माना जाता है। सृष्टि क्रम में प्रकृति पहले से ही विद्यमान होती है परन्तु पुरुष के संयोग से ही, भोगायतन की प्राप्ति के लिए सृष्टि की रचना होती है। अर्थात् पुरुष या आत्मा के संयोग से ही इस शरीर में चेतनता आती है अथवा यह जीवन के लक्षण उत्पन्न होते हैं। जीवन के इस धारक से ही जीवन की प्रवृत्ति मानी जाती है। आत्मा ही कर्म का, कर्मफल का, सुख–दुःख, ज्ञान, बंधन और मोक्ष का कारण होती है।
- आत्मा का वर्णन **अध्यात्म द्रव्य** के रूप में भी प्राप्त होता है।[11] आत्मा को अध्यात्म द्रव्य के रूप में समझना या इसका ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। आत्मा और मन का संबंध चेतनावान और क्रियावान का संबंध है। इस संबंध में आत्मा का प्रामुख्य है अतः मन को आत्मा में संयुक्त माना है एवम् आत्मा को अधिकृत करके ही द्रव्य तथा गुण कहे गये हैं। अध्यात्म द्रव्यगुण संग्रह का वर्णन इन्द्रियोपक्रमणीय अध्याय में किया गया है। यह स्वस्थ चतु क का अंतिम अध्याय है।

चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय	नाम	विषय वस्तु
5	मात्राशितीय	शारीरिक स्वास्थ्य ;दिनचर्या, आहारद्ध
6	तस्याशितीय	शारीरिक स्वास्थ्य ;ऋतुचर्याद्ध
7	न वेगान्धारणीय	अधारणीय वेग– शारीरिक स्वास्थ्य, धारणीय वेग– मानसिक स्वास्थ्य
8	इन्द्रियोपक्रमणीय	मानसिक, आध्यात्मिक और ऐन्द्रियक स्वास्थ्य

ये अध्यात्म द्रव्य गुण शुभ वि यों में प्रवृत्ति और अशुभ वि यों में निवृत्ति का कारण होते है। इसी प्रवृत्ति और निवृत्ति के कारण ही संसार में आवागमन का चक्र और मोक्ष की प्राप्ति होती है। किसी भी कार्य सम्पादन में आत्मा और मन का सहयोग अनिवार्य होता है इसी कारण अध्यात्म द्रव्यगुण संग्रहगत तत्त्वो को शुभ और अशुभ प्रवृत्तियों व निवृत्तियों का हेतु कहा गया है।

निष्कर्ष

- चरक संहिता में आत्म तत्त्व का विशद वर्णन प्राप्त होता है। यह वर्णन मुख्य रूप से आयुर्वेद के सिद्धान्तों –जैसे कि पुनर्जन्म, कर्मजव्याधि, सद्वृत्त एवं सृष्टिक्रम आदि के संदर्भ में मिलता है।
- चरक संहिता में आत्म तत्त्व का वर्णन यत्किन्चित दर्शनों एवं धार्मिक ग्रन्थों से भिन्न स्वरूप में मिलता है क्योंकि यह एक चिकित्सा शास्त्र है। इसलिए इस संहिता में आत्म तत्त्व का केवल उतना ही वर्णन प्राप्त होता है जिससे शि यों को इसकी प्राथमिक जानकारी मिल सके एवं वे चिकित्सा के लिए उसकी महत्ता को समझ सकें।
- चरक संहिता एक चिकित्सा शास्त्र है। इसलिए इसमें परमात्मा का अल्प रूप में वर्णन और मुख्यतः जीवात्मा का ही वर्णन प्राप्त होता है।
- चरक संहिता में आत्म तत्त्व को आयु एवं त्रिदण्ड के एक घटक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया जाना इस तथ्य का द्योतक है कि जीवन यापन, आरोग्य, रोग प्राप्ति एवं रोग विनाश में आत्म तत्त्व का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।
- आत्मा को द्रव्य माना गया है, वस्तुतः आत्मा की महत्ता के कारण जीवित शरीर के गुण कर्मों को आत्मा के गुण कर्मों के रूप में आरोपित कर उसे नव कारण द्रव्यों में से एक माना गया है।
- आधुनिक विज्ञान के अनुसार मन (mind) एवं बुद्धि (intellect) के द्वारा किए जाने वाली संज्ञानात्मक क्रियाओं (cognitive functions) को आयुर्वेद में आत्मा के माध्यम से होने वाली क्रियाओं के रूप में ही स्वीकार किया जाता है। इसके अतिरिक्त अनैच्छिक क्रियाओं को भी आत्मा की ही क्रियाओं के रूप में स्वीकार किया जाता है।
- भाड्धात्वात्मक पुरुष में आत्मा शब्द के द्वारा आत्मा के साथ–साथ मन का भी ग्रहण किया जाता है। जिसका आधार इन दोनों का नित्य साहचर्य एवं सत्त्व की औपपादुकता होती है।
- अध्यात्म द्रव्यगुण संग्रह का वर्णन स्वस्थ चतुष्क के अंतिम अध्याय इन्द्रियोपक्रमणीय में करने का हेतु उसकी मानसिक, आध्यात्मिक एवं ऐन्द्रियक स्वास्थ्य में महत्ता है।
- मानसिक विकारों का मूल प्रज्ञापराध होने के कारण आत्म तत्त्व का ज्ञान इन विकारों की चिकित्सा में अनिवार्य स्थान रखता है।
- चरक संहिता में आत्म तत्त्व का महत्त्व सृष्टि क्रम, आयुर्वेदावतरण, आयुर्वेद के द्विविध प्रयोजन, गर्भोत्पत्ति, गर्भोत्पादकभाव, ज्ञानोत्पत्तिक्रम, कर्मज व्याधियों की उत्पत्ति एवं चिकित्सा, दैवव्यापाश्रय चिकित्सा, नैष्ठिकी चिकित्सा, तृष्णा एवं मोक्षादि अनेक विषयों में दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्निवेशण चरक संहिता – आचार्य चरक द्वारा प्रतिसंस्कृता ए आचार्य दृढ़बल द्वारा संपूरिता तथा आचार्य चक्रपाणि द्वारा रचित आयुर्वेददीपिका टीका सहितण आचार्य यादवजी त्रिकमजी द्वारा संशोधिताण वाराणसीरू चौखम्भा प्रकाशनय, 2013; 22 –23.
2. अग्निवेशण चरक संहिता – आचार्य चरक द्वारा प्रतिसंस्कृता ए आचार्य दृढ़बल द्वारा संपूरिता तथा आचार्य चक्रपाणि द्वारा रचित आयुर्वेददीपिका टीका सहितण आचार्य यादवजी त्रिकमजी द्वारा संशोधिताण वाराणसीरू चौखम्भा प्रकाशनय, 2013; 70–73.
3. अग्निवेशण चरक संहिता – आचार्य चरक द्वारा प्रतिसंस्कृता ए आचार्य दृढ़बल द्वारा संपूरिता तथा आचार्य चक्रपाणि द्वारा रचित आयुर्वेददीपिका टीका सहितण आचार्य यादवजी त्रिकमजी द्वारा संशोधिताण वाराणसीरू चौखम्भा प्रकाशनय, 2013; 66.
4. अग्निवेशण चरक संहिता – आचार्य चरक द्वारा प्रतिसंस्कृता ए आचार्य दृढ़बल द्वारा संपूरिता तथा आचार्य चक्रपाणि द्वारा रचित आयुर्वेददीपिका टीका सहितण आचार्य यादवजी त्रिकमजी द्वारा संशोधिताण वाराणसीरू चौखम्भा प्रकाशनय, 2013; 4–5.
5. अग्निवेशण चरक संहिता – आचार्य चरक द्वारा प्रतिसंस्कृता ए आचार्य दृढ़बल द्वारा संपूरिता तथा आचार्य चक्रपाणि द्वारा रचित आयुर्वेददीपिका टीका सहितण आचार्य यादवजी त्रिकमजी द्वारा संशोधिताण वाराणसीरू चौखम्भा प्रकाशनय, 2013; 24.
6. वाग्भट्टण अष्टांग हृदय – आचार्य अरुणदत्त द्वारा रचित सर्वांगसुन्दरा टीका तथा आचार्य हेमाद्रि द्वारा रचित आयुर्वेदरसायन टीका सहितण भि ागाचार्य पंडित ाास्त्री हरि सदाशिव द्वारा संशोधितण वाराणसीरू चौखम्भा सुरभारती प्रकाशनय, 2007; 3.
7. Vyas KM. Critical Study of Rogabhishagjiteeya Vimana Adhyaya Of Charaka Samhita To Explore Its Clinical & Research Aspects. Ph.D.Thesis, Department Of Basic Principles, Jamnagar: IPGT&RA; Jan] 2014.
8. वाग्भट्टण अष्टांग हृदय – आचार्य अरुणदत्त द्वारा रचित सर्वांगसुन्दरा टीका तथा आचार्य हेमाद्रि द्वारा रचित आयुर्वेदरसायन टीका सहितण भि ागाचार्य पंडित ाास्त्री हरि सदाशिव द्वारा संशोधितण वाराणसीरू चौखम्भा सुरभारती प्रकाशनय, 2007; 12 – 57.
9. अग्निवेशण चरक संहिता – आचार्य चरक द्वारा प्रतिसंस्कृता ए आचार्य दृढ़बल द्वारा संपूरिता तथा आचार्य चक्रपाणि द्वारा रचित आयुर्वेददीपिका टीका सहितण आचार्य यादवजी त्रिकमजी द्वारा संशोधिताण वाराणसीरू चौखम्भा प्रकाशनय, 2013; 25 – 29.
10. अग्निवेशण चरक संहिता – आचार्य चरक द्वारा प्रतिसंस्कृता ए आचार्य दृढ़बल द्वारा संपूरिता तथा आचार्य चक्रपाणि द्वारा रचित आयुर्वेददीपिका टीका सहितण आचार्य यादवजी त्रिकमजी द्वारा संशोधिताण वाराणसीरू चौखम्भा प्रकाशनय, 2013; 75–76.
11. अग्निवेशण चरक संहिता – आचार्य चरक द्वारा प्रतिसंस्कृता ए आचार्य दृढ़बल द्वारा संपूरिता तथा आचार्य चक्रपाणि द्वारा रचित आयुर्वेददीपिका टीका सहितण आचार्य यादवजी त्रिकमजी द्वारा संशोधिताण वाराणसीरू चौखम्भा प्रकाशनय, 2013; 8 – 13.